राधाकृष्ण पेपरबैक्स

हादसे

रमणिका गुप्ता

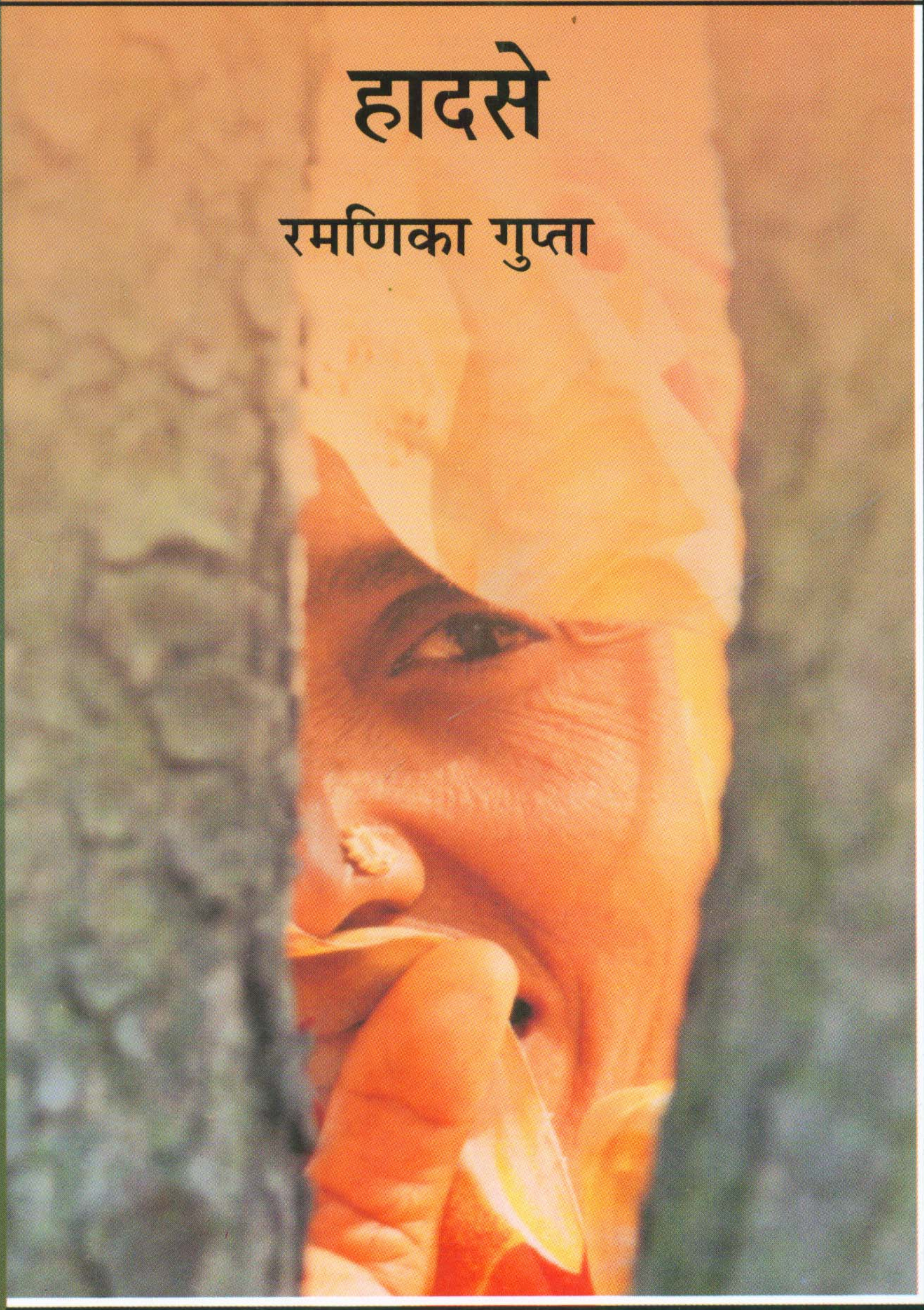

हादसे

रमणिका गुप्ता

जन्म : 22 अप्रैल, 1930, सुनाम, (पंजाब); शिक्षा : एम.एम., बी.एड.।

बिहार/झारखंड की पूर्व विधायक एवं विधान परिषद् की पूर्व सदस्या। कई गैर-सरकारी एवं स्वयंसेवी संस्थाओं से सम्बद्ध तथा सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक कार्यक्रमों में सहभागिता। आदिवासी और दलित महिलाओं-बच्चों के लिए कार्यरत। कई देशों की यात्राएँ। विभिन्न सम्मानों एवं पुरस्कारों से सम्मानित।

प्रकाशित कृतियाँ : *भीड़ सतर में चलने लगी है, तुम कौन, तिल-तिल नूतन, मैं आजाद हुई हूँ, अब मूरख नहीं बनेंगे हम, भला मैं कैसे मरती, आदम से आदमी तक, विज्ञापन बनता कवि, कैसे करोगे बँटवारा इतिहास का, प्रकृति युद्धरत है, पूर्वांचल : एक कविता-यात्रा, आम आदमी के लिए, खूँटे, अब और तब, गीत-अगीत* (काव्य-संग्रह); *सीता, मौसी* (उपन्यास); *बहू-जुठाई* (कहानी-संग्रह); *स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने, दलित हस्तक्षेप, निज घरे परदेसी, साम्प्रदायिकता के बदलते चेहरे, दलित-चेतना : साहित्यिक और सामाजिक सरोकार, दक्षिण-वाम के कटघरे और दलित-साहित्य, असम नरसंहार—एक रपट, राष्ट्रीय एकता, विघटन के बीज* (गद्य-पुस्तकें); इसके अलावा छः काव्य-संग्रह, चार कहानी-संग्रह एवं पाँच विभिन्न भाषाओं के साहित्य की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन सम्पादित। शरणकुमार लिंबाले की पुस्तक *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र* का मराठी से हिन्दी में अनुवाद। इनके अपने उपन्यास *मौसी* का अनुवाद तेलुगू में *पिन्नी* नाम से और पंजाबी में *मासी* नाम से हो चुका है।

सम्प्रति : सन् 1985 से *युद्धरत आम आदमी* (त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका) का सम्पादन।

आवरण-छाया : सर्वेश

प्रतिष्ठित फोटोग्राफर। 1989 से हिन्दी व अंग्रेजी के लगभग तमाम छोटे-बड़े समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में छायाचित्रों का प्रकाशन। देश के अनेक नगरों में छायाचित्र-प्रदर्शनी। हिन्दी अकादमी समेत कई संस्थाओं द्वारा सम्मान। फोटोग्राफी के अलावा पर्वतारोहण व यात्रा में अभिरुचि। प्रेस क्लब ऑफ इंडिया, वीमेन्स प्रेस कोर, दिल्ली जर्नलिस्ट एसोसिएशन ऑफ इंडिया व आथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया सहित कई संस्थाओं की सदस्य।

समर्पित

उन मज़दूरों को जिन्होंने मुझे विश्वास दिया
उन स्त्री कामगारों को जो बदलाव की भेंट चढ़ गईं
उन प्रतिद्वंद्वियों को जिनकी चुनौतियों ने
मुझे संघर्ष के लिए प्रेरित किया।
स्नेह और आस्था के उन क्षणों को जिन्होंने
मुझे कभी निराश नहीं होने दिया।
उन बीहड़ जंगलों को, लंबी यात्राओं को जिन्होंने
मुझे कभी भी थकने नहीं दिया।

आत्मकथा के अनेक पाठ

दुर्दम्य और दुर्धर्ष ! रमणिका गुप्ता की इस आत्मकथा को पढ़ते हुए दो ही शब्द बार-बार दिमाग़ में आते हैं। अगर इसे कोई दूसरा नाम दिया जा सकता है तो वह है अपराजेय संघर्ष-कथा।

सही है कि रमणिका, इन्दिरा गांधी की तरह देश की बड़ी नेता नहीं हैं, न वह मेधा पाटेकर हैं। आज उन्होंने अपना युद्धक्षेत्र बदल दिया है और शब्दों के माध्यम से दलितों, आदिवासियों की लड़ाई लड़ रही हैं मगर उनकी यह संघर्ष-कथा कई महत्त्वपूर्ण सवाल उठाती है। उत्तर-भारतीय राजनीति में स्त्री की स्थिति क्या है ? क्या खेतों, खलिहानों, खदानों और आदिवासियों के बीच ज़मीनी लड़ाइयों से उठकर भी वह शीर्ष पर आ सकती है? इन्दिराजी, नेहरूजी की बेटी हैं और पद-प्रतिष्ठा उन्हें विरासत में मिली है। कितना आसान है कि आज सोनिया और प्रियंका गांधी फिर केन्द्र में आ जाएँ ! अगर वे ठेठ ज़मीन से उठी होतीं तो कितना ऊपर जा सकती थीं?

बिहार जैसे अराजक प्रदेश के सामन्ती-मोर्चों पर नंगे-भूखों को लेकर उनके अधिकारों की लड़ाई लड़ना, लामबन्द करके उनके हक़ दिलाना, सचमुच जान-जोखिम में डालना है। एक जंगल राज है जहाँ पुराने सामन्तों, ज़मींदारों, ठेकेदारों और बाहुबलियों का बोलबाला है। अनन्त प्राकृतिक सम्पदाओं से भरी हुई धरती पर लूट, हत्या, अपहरण साधारण जीवन-प्रणाली का दूसरा नाम है, फिर बाढ़, सूखा, गर्मी-सर्दी के मौसमी प्रकोप...इन सबके बीच पंजाब के अभिजात परिवार से आई हुई एक स्वस्थ-सुन्दर स्त्री रमणिका...रहस्य, रोमांच और सस्पेंस का पूरा फ़िल्मी मसाला...

इस आत्मकथा को स्त्री के अपने चुनाव की कहानी भी कहा जा सकता है। पटियाला के बड़े मिलिटरी अफसर की ज़िद्दी और अपने मन का करनेवाली लड़की जो अपनी हरकतों से बार-बार बाप और उनके परिवार को असुविधाओं में डालती है, खुली मीटिंगों में उनके सामन्ती दुमुँहेपन पर प्रहार करती है, विभाजन की त्रासदी झेलती मुस्लिम महिलाओं की आवाज़ बनकर जवाब माँगती है और फिर अपने मन से क्षत्रिय (राजपूत) परिवार छोड़कर वेद प्रकाश (गुप्ता) से शादी करके बिहार (झारखंड समेत) चली आती है। यहाँ आकर पति से विद्रोह करके मज़दूरों-कामगारों के बीच उनके संघर्ष का जीवन चुनती है। रमणिका ने हर जगह सुख-सुविधाओं को छोड़कर बीहड़ रास्ता चुना है।

इस आत्मकथा को सामन्तवाद और लोकतन्त्र के खूनी द्वन्द्व की तरह भी पढ़ा जा सकता है। बेटी की तरह पंजाब के रियासती सामन्तवाद से लड़ना और फिर बाक़ायदा, ग़रीबों के साथ खड़े होकर बिहार के सामन्ती संघर्षों में उतरना और सम्मानित डॉक्टर की यह बेटी, सरकारी अफ़सर की पत्नी बिहार के पिछड़े, अशिक्षित, और भुखमरी के शिकार उन क्षेत्रों में पहुँच जाती है जहाँ इसी सामन्तवाद की शिकार जनता रोज जी और मर रही है; जहाँ राजाओं, ज़मींदारों, भू-माफ़ियाओं, रंगदारों का एक छत्र-राज्य है—न वहाँ सरकार है न क़ानून जैसी कोई चीज़। अगर कुछ है तो जाति संगठनों और समूहों के गोलबन्द खूनी संघर्ष। डाकू वहाँ जंगलों और बीहड़ों में नहीं, बाक़ायदा अपनी जातियों के राजाओं के रूप में गाँवों और शहरों में रहकर अपने-अपने राज्य चलाते हैं। वर्चस्व की आपसी लड़ाइयाँ ही बिहार के संघर्षों को अपना अलग राजनैतिक रंग-रूप देती हैं। दूसरे राज्यों में सरकारें अपनी उपस्थिति से सुरक्षा का छद्म वातावरण तो बनाए रखती हैं—बिहार में सरकारी अफ़सर सिर्फ़ इन अपराधी-समूहों के हाथों की कठपुतलियाँ हैं। व्यापक असुरक्षा ने बिहार को राजनीतिक स्तर पर सबसे जागरूक प्रदेश बना दिया है, यानी अपने मानवीय और लोकतान्त्रिक अधिकारों की चेतना—या उस चेतना का ग़लत-सही इस्तेमाल आम-बिहारी को शेष भारत से अलग करता है। असफलताएँ और फ्रस्टेशन उसकी आक्रामकता को लगभग रणनीतिक चतुराई देता है। निचलों और पिछड़ों के ये राजनीतिक उभार एक ओर जहाँ सर्वहाराओं और मज़दूरों के पलायन के रूप में दिखाई देते हैं तो मध्यवर्गीय शिक्षितों की दूसरे प्रदेशों की विराट सम्भावनाओं में अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति के रूप में। दिल्ली आज लगभग बिहार—झारखंड का उपनिवेश है।

इन्हीं तूफानी झंझावातों से गुजरकर आई है रमणिका गुप्ता। आर्य समाज, कांग्रेस, समाजवादी और कम्युनिस्ट होने की उनकी यह यात्रा भारतीय राजनीति के नाटकीय मोड़ों का इतिहास भी है और विकास भी। इस माहौल में इस आत्मकथा को एक 'अबला' का परत-दर-परत अपने को छीलते जाने और सबला के अधिकार की प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है, हालाँकि यहाँ (इस खंड में), यह एक औरत की नहीं राजनीतिक कार्यकर्ता की कहानी अधिक है। कितना दुष्कर रहा होगा आर्यसमाजी संस्कारों में पली हुई एक लड़की के लिए पुरुष साथियों के साथ जंगल-जंगल भटकना, साथ सोना-खाना, सेक्स और प्यार के भावनात्मक द्वन्द्वों से गुज़रना और कभी गोली और कभी फरसों के हमलों से बच निकलना...चाहे एवरेस्ट पर चढ़नेवाली पवर्तारोही लड़कियाँ हों या अन्तरिक्ष-यानों में उड़नेवाली कल्पना चावलाएँ—वह सब कहाँ छूट जाता है—जो घरों-परिवारों में 'लड़की' होने के नाम पर घुट्टी में पिलाया जाता है...पुरुषों द्वारा नियन्त्रित, संचालित बिहार की राजनीति में चालीस साल एक औरत की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति कितना कुछ बना-बिगाड़ पाई है उसे देखना रोचक है। सपनों, संघर्ष और साहस की यह कहानी बीसवीं सदी के भारत का वह इतिहास है जिसे मुख्यधारा के इतिहासकारों ने बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया और जिसे खेतों-खलिहानों और खदानों

में रमणिका ने अपने यौवन और प्रौढ़ उम्र के काग़ज़ों पर लिखा है। यहाँ उन कुछ जुझारू नेताओं को नाम से पहचाना जा सकता है जो तब युवा रमणिका के सहयोगी के रूप में समाजवादी सपनों से आक्रान्त थे और हथेली पर प्राण रखकर संघर्ष कर रहे थे। दिलचस्प यह भी है कि उनमें से ही अब कुछ सम्प्रदायवादी बीजेपी की छाँह में बैठे घूस-दलाली और भ्रष्टाचार भकोस रहे हैं।

सही है रमणिका की आत्मकथा का यह खंड उनके जीवन की तरह, ऊबड़-खाबड़ है। इसे और अधिक कलात्मक बनाया जा सकता था, भाषा में प्रभावशाली प्रयोग किए जा सकते थे, मगर शायद ज़िन्दगी से जूझते लोगों के पास इतनी फुरसत कहाँ होती है ? वे ऐसे प्रामाणिक दस्तावेज़ ज़रूर छोड़ जाते हैं कि उन्हें इतिहास, राजनीति और साहित्य की स्रोत-सामग्री के रूप में सुरक्षित रखा जा सके।

इस दृष्टि से यह आत्मकथा महत्त्वपूर्ण भी है और प्रेरणाप्रद भी...

–राजेन्द्र यादव

अनुक्रम

आत्मकथा के अनेक पाठ 7

हादसे

औरत अगर ख़ुदसर हो 15
परम्परा तोड़ने का हठ 18
रियासतों का हस्तान्तरण 19
विभाजन और दंगे 20
प्रेम और विवाह 24
स्वयंसिद्धा होने का संकल्प 26
मेरी कच्छ-यात्रा 29
अपराध-बोध और आत्मदया की ग्रन्थियाँ 52
मांडू का चुनाव 55

कोयला खदानों में संघर्ष

राजा खदान 61
टाटा से टक्कर 74
यूनियन का गठन 79
केदला कोलियरी में पहली मीटिंग 83
एक दिशा की ओर चल पड़े सैकड़ों पाँव 87
लोकसभा में याचिका 91
मैं पीछे से नहीं भागूँगी 94
कुजू-कूच 98
तीर लेके पहुँचो-गुलेल लेके पहुँचो 108
चम्पा-चमेली का मिलन 111
जेल में पगली घंटी 114
जब लाठी-भाले का वश नहीं चला 115
रैलीगढ़ा आन्दोलन और श्री एस.एम. जोशी का आमरण अनशन 118
कोयले की बौछारों से आकाश 'करिया' हो गया 122
केदला की हड़तालों पर सौदेबाजी 131
मुझसे खाना मत माँगना, कफ़न का जुगाड़ मैं कर दूँगी 136
चन्द्रास्वामी का पारसनाथ यज्ञ 139

1973 में खदानों का राष्ट्रीयकरण

राष्ट्रीयकरण के समय का परिदृश्य 147
इन्दिराजी ! ख़तरा आपको वाहर से नहीं—भीतर से है 151
झंडों की लड़ाई 154
सीता को बनवास देने का आदेश 156
सूचियाँ-ही-सूचियाँ 159
सूखी हड्डियों वाले चेहरों पर ख़ुशी की लहर और स्क्रीनिंग का कहर 163
आर्बीट्रेशन 165
विस्थापितों के संघर्ष की नींव और स्थानीय की परिभाषा 167
मैं कांग्रेस की जिलाध्यक्ष बनी 169
अवैध खनन 172
संजय गांधी से मुलाकात 176
राष्ट्रीय कोलियरी मज़दूर संघ का विवाद 182
आपात्काल 185
ज़मीनों की वापसी 191
1976 से 1980 के बीच की घटनाएँ 195
मैंने मांडू से तापेश्वर देव को हराया 205
1980 का विस्थापित आन्दोलन 207
सुप्रीम कोर्ट से स्टे-ऑर्डर 230
रेलवे की ज़मीन की याचिका 236
सिंगरौली में बनी यूनियन 239
विधायक न रहने पर 240

बिहार विधान-परिषद्/विधान-सभा में उठे विवाद : राजनीतिक संस्मरण एवं निष्कर्ष

स्त्री होने के कारण ही 245
ऊँचे पहाड़ जैसे डीलडौल की काली चट्टान 246
मुझे अपनी जान प्यारी नहीं 247
विधान-सभा में मर्यादा पर चोट 249
याचिका समिति के गोवा दौरे में उठा विवाद 251
औरत का पक्ष 254
प्रेस-बिल 256
नाच नचनिया नाच 257
ग़ैर-कांग्रेसी सरकार का गठन और मेरी भूमिका 259
स्त्री के प्रति पत्रकारों, पार्टियों व स्वयं स्त्रियों की मानसिकता 261
स्त्री-मुक्ति का अर्थ पुरुष विरोध नहीं 265

हादसे

औरत अगर .ख़ुदसर हो

औरत अगर .खुदसर हो, पंजाबी भाषा में कहूँ 'आपहुदरी'—तो उसकी मुखालफत लाज़िमी होती है और अगर कहीं राजनीति में हो और वह भी लता बनकर नहीं बल्कि पेड़ या खूँटा बनकर तो उसे हिला देने की तरकीबें, झकझोर देने के ढंग, उखाड़ फेंकने के प्रयास इन्तहा पर पहुँच जाते हैं। अगर वह ट्रेड यूनियन में हो, वह भी सफेदपोशों की यूनियन में नहीं बल्कि स्वयं वर्गहीन होकर खाँटी खटनेवाले ब्लू कालर (Blue Collered) कोयला मज़दूरों के बीच रहकर उन्हें संगठित कर आन्दोलित करने का दम रखती हो, तब तो 'युद्ध और प्रेम में हर चीज जायज़ है' का फॉर्मूला लागू करने में सहयोगी, सहभागी—यहाँ तक कि मित्र और प्रशंसक भी देर नहीं लगाते—दुश्मनों का तो कहना ही क्या ! हाँ, दुश्मनों का ! ऐसी औरत के दुश्मन खड़े हो जाते हैं। दुश्मनी इसलिए नहीं होती कि उससे कुछ नुकसान पहुँचेगा, वह समान कारण तो स्त्री-पुरुष दोनों पर ही लागू होता है—दुश्मनी इसलिए कि एक औरत ने इतने लोगों का विश्वास कैसे प्राप्त कर लिया—बिना उनकी मदद के यह कैसे सम्भव हुआ ! जरूर दाल में कुछ काला है ! यह डाह ही दुश्मन खड़ा कर देती है। तब ऐसी औरत के ख़िलाफ़ बहुत-सी 'कनफुसकियाँ', अफवाहें, चटपटी प्रणय-कथाएँ, झूठे-सच्चे किस्से हवा में तैरने लगते हैं।

वैसे राजनीति में कोई स्थायी दुश्मनी या मित्रता नहीं होती। समीकरण बदलते रहते हैं पर अगर कोई यह कहे कि हमारा पुरुष समाज औरत को औरत समझकर उसकी हठधर्मिता बर्दाश्त कर ले या सह ले—बख़्श दे उसकी उन्मुक्तता—तो यह नितान्त ग़लत-बयानी होगी। पुरुष औरत को उसी हालत में बर्दाश्त करता है, जब उसे यह यकीन हो जाए कि वह पूरी तरह उसी पर आश्रित है और .खुद कोई निर्णय नहीं ले सकती या फिर वह स्वयं उस औरत से डरने लगे, तो वह उसे सहता है। पुरुष के मुकाबले में कोई पुरुष हो तो उन्हें अपनी क्षमता का फर्क उन्नीस या बीस ही नजर आता है लेकिन अगर औरत खुदमुख्तार होकर सामने खड़ी हो जाए, वह भी निर्णय ले सकनेवाली औरत, तो चाहे बिन चाहे वह हीन-भावना से दब जाता है और उसे अपनी तुलना में वह औरत बाईस लगने लगती है। ईर्ष्यावश शत्रुता का अंकुर मन में जन्म लेता है। वह समझता है कि औरत के पास उसके समान गुणों के अतिरिक्त आकर्षित और प्रभावित करने की क्षमता अधिक होती है और इसे ही वह अपने पौरुष के लिए चुनौती मान बैठता है। अत्यन्त प्रेम और समर्पण के क्षणों में भी पुरुष अपने निर्णय को अन्तिम साबित करने की ज़िद करता है। मैंने जीवन में इस अन्तिम निर्णय को